SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

प्राचीन भारत में सन्धिविग्रहिक की दानपत्र लेखक के रुप में भूमिकाः एक संक्षिप्त अध्ययन

दिवाकर मिश्र, पीएच–डी, इतिहास विभाग
राजकीय कन्या महाविद्यालय, खींवसर, नागौर, राजस्थान, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
दिवाकर मिश्र, पीएच–डी
E-mail : dfordiwakar@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 02/03/2026
Revised on : 03/05/2026
Accepted on : 12/05/2026
Overall Similarity : 00% on 04/05/2026

Plagiarism Checker X - Report
Originality Assessment
0%
Overall Similarity

Date: May 4, 2026 (05:54 PM)
Matches: 0 / 2637 words
Sources: 0

Remarks: No similarity found, your document looks healthy.

Verify Report:
Scan this QR Code

शोध सार

अभिलेख प्राचीन भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। अभिलेखन के लिए प्रस्तर के बाद ताम्रपत्र सर्वाधिक लोकप्रिय व प्रचलित वस्तु थी, जिसका निर्माण तथा उपयोग मुख्य रूप से दानात्मक अभिलेखों के लिए किया जाता था। अभिलेखन के कार्य में लिपिकार, लेखक, लिपिक, दिविर, करणिक, कायस्थ आदि के रूप में लेखकों का व्यवसायिक वर्ग संलग्न था। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रशासनिक अधिकारी भी प्रारूप निर्माण के कार्य में न्यूनाधिक रूप से संलग्न रहा करते थे। इनमें सन्धिविग्रहिक महत्वपूर्ण था, जिसे स्मृतिकारों ने लेखक कहा है। वस्तुतः युद्ध व शान्ति का प्रमुख होता था किन्तु लेखक के रूप में उसका प्रमुख कार्य दानपत्रों का प्रारुप निर्मित करना था। इस दृष्टि से जहां प्राचीन साहित्यकारों ने इसकी लेखन सम्बन्धी योग्यता का विशद वर्णन किया है, वहीं भारत के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त होने वाले दानपत्रों में इसका लेखक के रूप में उल्लेख सन्धिविग्रहिक की लेखकीय गुण तथा दायित्व को स्पष्टतः पुष्ट करता है। प्रस्तुत शोधपत्र में इसी अल्पज्ञात पक्ष पर प्रकाश डालतें हुए सन्धिविग्रहिक की दानपत्र लेखक के रुप में भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।

मुख्य शब्द

सन्धिविग्रहिक, अमात्य, स्मृति, राजलेखक, दानपत्र, लिपि, प्रशासन, अभिलेख.

भारत में प्रारम्भ से ही मंत्रिमण्डल को राजव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। अर्थशास्त्र में उल्लेखित है कि जैसे एक पहिये से रथ नही चल सकता, वैसे ही बिना मंत्रियों की सहायता के अकेले राजा से राज्य नही चल सकता। प्राचीन काल में भारत छोटे–बड़े कई राज्यों में विभक्त था अतः अपनी विदेश नीति का निर्धारण व अन्य राज्यों के साथ राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए मन्त्रिमण्डल में प्रायः सन्धिविग्रहिक के नाम से एक मन्त्री होता था। वह युद्ध व शान्ति का प्रमुख होने के साथ राजलेखक की भूमिका का

निर्वहन भी करता था। राजलेखक के रूप में अन्य राज्यों के साथ राजकीय पत्र–व्यवहार करना, शासकों द्वारा जारी दानपत्रों का विवरण, मौखिक आदेश आदि लिखने का कार्य करता था।

'सन्धिविग्रहिक' का शाब्दिक अर्थ है युद्ध व सन्धि का अधिकार रखने वाला। फ्लीट, पी. वी. काणे तथा डी. सी. सरकार आदि विद्वानों ने भी इसे युद्ध व शान्ति विभाग का प्रमुख बतलाया है। इसके लिए सन्धिविग्रहाधिकृत, सन्धिविग्रहाधिकरणाधिकृत और सन्धिविग्रहिन् आदि अन्य संज्ञाएं भी प्रयुक्त की जाती थी।

'सन्धिविग्रहिक' शब्द का प्राचीनतम उल्लेख महाभारत के शान्तिपर्व में प्राप्त होता है। युद्ध व सन्धि करने वाले अधिकारी को कतिपय ग्रन्थों में दूत भी कहा गया है। मनुस्मृति में अन्य राज्यों से संबंध निश्चित करने वाले कूटनीतिक मन्त्री को दूत कहा गया है (दूतो सन्धिविपर्ययौ)। रामायण तथा शुक्रनीति में भी इसकी यही संज्ञा मिलती है। शासन व्यवस्था में सन्धिविग्रहिक पद गुप्तकाल से अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। इसका प्राचीनतम अभिलेखीय प्रमाण भी हमें इसी काल से मिलने लगता है। गुप्त शासक समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति का रचयिता हरिषेण सन्धिविग्रहिक ही था (सन्धिविग्रहिककुमारामात्य महादण्डनायक हरिषेणस्य)। उसने इस प्रशस्ति में समुद्रगुप्त की विजयों का विस्तृत व रोचक वर्णन किया है। बहुत सम्भव है वह समुद्रगुप्त के विजय अभियानों का सहयोगी तथा प्रत्यक्षदर्शी रहा हो।

ध्यान देने योग्य बात है कि इस लेख में हरिषेण को कुमारामात्य व महादण्डनायक भी कहा गया है, अर्थात वह अन्य प्रशासनिक पदों पर भी नियुक्त था। कल्हण की राजतरंगिणी में कश्मीर के शासक ललितादित्य द्वारा अपने सन्धिविग्रहिक मित्रशर्मा को पंचमहाशब्द अर्थात महाप्रतिहार, महासन्धिविग्रहिक, महाश्वशाला, महाभाण्डागार तथा महासाधनभाग इन पाँचों पदों का अधिकारी बनाने का उल्लेख मिलता है। इन विवरणों से लगता है कि सन्धिविग्रहिक न केवल मन्त्रीमण्डल का एक महत्वपूर्ण सदस्य होता था बल्कि आवश्यकता पड़ने पर अन्य विभागों का कार्यभार भी यह देखता रहा होगा।

शासन व्यवस्था में सन्धिविग्रहिक के महत्व को देखते हुए इसकी कतिपय योग्यताएं भी निर्धारित की गयी थी, जिसमें इसे दक्ष होना अपेक्षित व अनिवार्य था। विभिन्न साहित्यिक साक्ष्यों से इसकी जिन योग्यताओं का ज्ञान होता है, उनमें इसकी लेखन व वाचन सम्बन्धी योग्यता भी शामिल थी। सन्धिविग्रहिक की इन योग्यताओं में इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम ज्ञान महाभारत से होता है, जिसमें मन्त्री तथा सेनापति को अन्य योग्यताओं के साथ–साथ सन्धि–विग्रह के अवसर को जानने वाला, धर्मशास्त्र का तत्वज्ञ बताया गया है (धर्मशास्त्रार्थतत्वज्ञः सांधिविग्रहिको भवेत)। राजव्यवस्था व परराष्ट्र सम्बन्धों का विस्तृत वर्णन करने वाले कौटिल्य ने यद्यपि अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र में सन्धिविग्रहिक का प्रत्यक्षतः उल्लेख नही किया है किन्तु उन्होंने शासनाधिकार नामक प्रकरण में लिखा है कि संधि, विग्रह आदि षाड्गुण्य संबंधी राजकीय कार्य शासनमूलक (लिखित) होने पर ही ठीक समझे जाते हैं। अतः राजकीय शासन लिखने वाले लेखक को अमात्य की योग्यता वाला आचार–विचार का ज्ञाता, शीघ्र ही सुन्दर वाक्य–योजना में निपुण, सुलेखक और विभिन्न लिपियों को पढ़ने–लिखने वाला होना चाहिएः

सन्धिविग्रहयोः। तस्मादमात्यसम्पदोपेतः सर्वसमयविदाशुग्रन्थश्वार्वक्षरो लेख वाचन समर्थो लेखकः स्यात्।

मौर्यकालीन प्रशासन में सन्धिविग्रहिक का पद व्यवहार में नही था अतः अर्थशास्त्र में उसके स्थान पर अमात्य का उल्लेख मिलता है, जो उस काल में बहुत ही महत्वपूर्ण प्रशासनिक पद था। इसके साथ ही कौटिल्य ने राजदूतों का वर्गीकरण भी अमात्य की योग्यता के आधार पर ही किया है (अमात्यसम्पदोपेतो निसृष्टार्थः, पादगुणहीनः परिमितार्थः, अर्धगुणहीनः शासनहरः।) जिससे सिद्ध होता है कि लेखक, राजदूत व अमात्य तीनों की योग्यताएँ समान ही थी।

मत्स्य पुराण के अनुसार राजा द्वारा नियुक्त सन्धिविग्रहिक षाड्गुण्य तथा विधि का विशेषज्ञ हो, विभिन्न देश की भाषाओं का जानकार हो साथ ही नीतिशास्त्र का भी ज्ञाता होः

षाड्गुण्यविधितत्त्वज्ञो देशभाषाविशारदः। सन्धिविग्रहिकः कार्यो राजा नयविशारदोः।।

जैनग्रन्थ पद्म पुराण के एक प्रसंग में राजदरबार में सन्धिविग्रह में निपुण तथा सब लिपियों के जानकार लेखक द्वारा राजकीय पत्र को पढ़ने का उल्लेख मिलता है, जिसने राजा के नेत्र से सम्मान पाकर पत्र को एक बार स्वयं पढ़ा तथा दूसरी बार उच्च स्वर से वाँचाः

गृहीत्वासौ ततो राज्ञाबाह्यनामकलक्षितः। लेखकायार्पितः साधु सन्धिविग्रह वेदिने।।
स विमुच्यानुवाच्यैनं चायितो राजचक्षुषा। लिपिचुरुर्विधौ चारुरित्यवाचयदरुगी।।

यहाँ न केवल लेखक की योग्यताओं का बल्कि उसके द्वारा राजदरबार में पत्र पढ़ने की प्रक्रिया का भी ज्ञान होता है, जो अन्यत्र देखने नही मिलता। इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि तत्कालीन समय में राजदरबार में पत्रवाचन को कितना महत्व दिया जाता था। यह कार्य भी सन्धिविग्रह में कुशल व्यक्ति ही करता था।

यशस्तिलक में कहा गया है कि जो राजा के भेजे हुए शासन (लेख) को विस्तृत व स्पष्ट रूप से वाँचता है, लिखता है, वर्णन करता है, अपने हृदय में स्थित हुए अभिप्राय को दूसरों के हृदय में स्थापित करता हुआ समस्त अठारह प्रकार की लिपियों और भाषाओं को अन्य राजाओं तक ज्ञापित करता हो तथा जो अपने स्वामी व शत्रु की मर्यादा के ज्ञान में कुशल हो उसे ही राजदूत (सन्धिविग्रहिक) नियुक्त करना चाहिएः

वाचयति लिखति कवते गमयति सर्वालिपिश्च भाषाश्च। आत्मपरिस्थितिकुशलः सप्रतिभः सन्धिविग्रही कार्यः।।

इसी प्रकार सोमेश्वर ने भी मानसोल्लास में सन्धिविग्रहिक की योग्यता का वर्णन करते हुए उसे दूसरे के चित्त को प्रसन्न करने वाला, बुद्धिमान, दक्ष सभी भाषाओं में निपुण हो, जो सन्धि–विग्रह के तत्व को जानने वाला, लिपि को जानने वाला तथा अक्षरों को पढ़ने में सक्षम बतलाया है।

उन्होनें अपने अन्य ग्रन्थ नीतिवाक्यमृतम् में सन्धिविग्रहिक के गुणों का विस्तार से वर्णन करते हुए बतलाया है कि व्याकरण व तर्कशास्त्र में कुशल बुद्धि, स्पष्ट अक्षर बोलने वाला, स्पष्ट अर्थ वाले वाक्यों का प्रयोग करने वाला, मधुर ध्वनि वाला, धृष्ट, प्रतिभाशाली, अच्छी तरह वितर्क करने में कुशल और विनयी, समस्याओं को निश्चयात्मक रूप से जानकर प्रमाण देने में समर्थ समस्त लिपि, भाषा, चारों वर्णों के आचार–विचार, समयागम और अपने तथा पराये से व्यवहार में कुशल, शीघ्र पढ़ने व लिखने में सर्मथ व्यक्ति ही सन्धि विग्रहिक होना चाहिए।

साहित्यिक साक्ष्यों में वर्णित उपरोक्त योग्यताओं से परिपूर्ण व्यक्ति ही सन्धिविग्रहिक पद पर नियुक्त किया जाता था। इसकी पुष्टि अभिलेखों से भी होती है। जहाँ प्रयाग प्रशस्ति का रचयिता सन्धिविग्रहिक हरिषेण काव्य रचना में निपुण था, वहीं चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि गुहा लेख से ज्ञात होता है कि सन्धिविग्रहिक वीरसेन शब्दार्थ, तर्कशास्त्र व लोक व्यवहार का ज्ञाता था। साथ ही उसे कवि भी कहा गया है। इसी प्रकार ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी के भुवनेश्वर प्रस्तर लेख में राजा हरिवर्मा के सन्धिविग्रहिक भवदेव को सिद्धान्त, तन्त्र, गणित, अर्थशास्त्र व वेदों का ज्ञाता बतलाया गया है।

जहाँ तक सन्धिविग्रहिक के कार्य का प्रश्न है तो, वह राजा का विश्वासपात्र व युद्ध आदि के सम्बन्ध में प्रमुख सलाहकार होता था। इसी कारण सन्धिविग्रहिक को राजा का दाहिना हाथ भी कहा गया है। सामान्यतः इसका प्रमुख कार्य दूसरे राज्यों के साथ विदेशनीति का निर्धारण करना था। किन राज्यों पर कब आक्रमण किया जाए, अधीनस्थ राजाओं व सामन्तों के प्रति क्या व्यवहार किया जाए तथा आवश्यकता पड़ने पर उनसे सम्बन्ध–विच्छेद करने आदि जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर सन्धिविग्रहिक राजा को परामर्श देता था। इसके साथ ही वह शासन–प्रशासन में राजलेखक के रूप भी सक्रिय भूमिका निभाता था। राजा का विश्वासपात्र होने के कारण राजकीय पत्रों व राजा के मौखिक आदेशों को भी लिखने का कार्य यही करता था। इसके साथ ही इस रुप में सन्धिविग्रहिक का एक महत्वपूर्ण कार्य शासकों द्वारा दिये जाने वाले दानपत्रों का प्रारुप तैयार करना था।

स्मृतियों से ज्ञात होता है कि दानपत्रों के लेखन का कार्य सन्धिविग्रहिक ही करता था। स्मृतिकार वृहस्पति ने दान के विवरण को ताम्रपत्र या वस्त्र पर लिखवाकर राजा की मुहर सहित हस्ताक्षर और सन्धिविग्रहिक के हस्ताक्षर अंकित करने का निर्देश दिया है (ज्ञातं मयेति लिखितं सन्धिविग्रहलेखकैः) । व्यास के अनुसार भी राजशासन स्वयं राजा के निर्देश पर ताम्रपत्र या वृस्त्र पर सन्धिविग्रहिक द्वारा हुआ होना चाहिएः

राज्ञा तु स्वयंमादिष्टः संधिविग्रहलेखकः। ताम्रपट्टे पटे वापि विलिखेद्राजशासनम्।।

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार विज्ञानेश्वर कहते है कि राजशासन सन्धिविग्रहिक के द्वारा ही लिखा जाना चाहिए किसी और के द्वारा नही उन्होंने सन्धिविग्रहिक को ही लेखक माना गया है (सन्धिविग्रहादिकारिणा येन केनचिल्लेख्यम्, सन्धिविग्रहकारी तु भवेद्यस्तत्र लेखकः)। विधि निर्माताओं की ही भांति ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी के लेखक लक्ष्मीधर ने भी अपने ग्रन्थ कृत्यकल्पतरू में ताम्रपत्र लेखन का कार्य सन्धिविग्रहिक को सौंपने का निर्देश दिया है। वह स्वंय भी गहड़वाल शासक गोविन्दचन्द के दरबार में इसी पद पर नियुक्त था।

दान सम्बन्धी विवरण लिखने का कार्य सन्धिविग्रहिक को ही दिये जाने का क्या कारण था, इस प्रश्न पर स्मृतियाँ प्रायः मौन हैं, किन्तु कतिपय अनेक विद्वानों ने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। ए. एस. अल्तेकर ने दानपत्रों के लेखन का कार्य सन्धिविग्रहिक द्वारा किए जाने का कारण उसके द्वारा शासक की वंशावली और हरेक की वीरता और विजयों का बखान अच्छे से करना बताया है, जिसका उल्लेख प्रायः दानपत्रों में किया जाता था। अल्तेकर के इस मत के विपरीत रामशरण शर्मा लिखते हैं कि सम्भवतः इस अधिकारी का मुख्य कर्त्तव्य सामंतों से निपटना था, जिनके नाम शायद शासन पत्र जारी किए गये होंगे। कदाचित् इसीलिए धार्मिक ग्रहीताओं के नाम से शासनपत्र जारी करने का काम भी उसी के सुर्पुद कर दिया गया

होगा जबकि के. पी. जायसवाल इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि बहुत छोटे से दान के लिए भी मन्त्री परिषद की स्वीकृति सन्धिविग्रहिक देता था, जिसे कदाचित् इस बात का विचार करना पड़ता था कि वह दान परराष्ट्र विभाग की दृष्टि से सही है कि नही। दान के ग्रहीता लोग विदेशों से आये हुए भी हो सकते थे। वे शत्रु–पक्ष के गुप्तचर हो सकते थे इसलिए पर–राष्ट्र विभाग को इस बात का अधिकार होता था कि वह किसी दान को स्वीकृत या अस्वीकृत कर सके। इन विचारों से यद्यपि वास्तविक कारण तो स्पष्ट नही हो पाता तथापि रामशरण शर्मा की अपेक्षा अल्तेकर और के0पी0 जायसवाल के मत सत्यता के अधिक निकट प्रतीत होते हैं।

दानपत्रों के व्यापक प्रचलन व स्मृतिकारों के नियमानुसार दानपत्रों का प्रारुप तैयार होने से दानपत्रों में लेखक के रुप में प्रायः इसकी उपस्थिति देखी जा सकती है। गुप्तवंशीय शासक वैन्यगुप्त के गुनैधर ताम्रपत्र का लेखक कायस्थ नरदत्त संधिविग्रहिक के पद पर आसीन था। गुप्त शासकों के ही समकालीन उच्छकल्प वंशीय महाराज हस्तिन के खोह ताम्रपत्र का लेखक सूर्यदत महासन्धिविग्रहिक था (महासन्धिविग्रहिक सूर्यदतेन)। यह सन्धिविग्रहिक की उच्च्तर स्थिति का द्योतक है। फ्लीट ने भी इसे सन्धिविग्रहिक से श्रेष्ठ अधिकारी बतलाया है। इसी प्रकार महाराज हस्तिन के ही मझगवाँ ताम्रपत्र के लेखक विभुदत्त, महाराज शर्वनाथ के 193 व 197 शासन वर्ष खोह ताम्रपत्रों के लेखक मनोरथ व महाराज शर्वनाथ के ही 214 शासन वर्ष का खोह ताम्रपत्र के लेखक नाथ सभी महासन्धिविग्रहिक पद पर आसीन थे। इसी प्रकार बलभी के मैत्रक शासको के अनेक लेखों में लेखक सन्धिविग्रहिक ही थे। पूर्वमध्यकाल में कलचुरि शासको के कई ताम्रपत्रों का लेखन कार्य सन्धिविग्रहिक ने ही किया था। व्याघ्रसेन के सूरत ताम्रपत्र का प्रारूप सन्धिविग्रहिक कर्क ने तैयार किया था। शंकरगण के अभोण, वडनेर, सरसवणी ताम्रपत्र के लेखक महासन्धिविग्रहिक ही थे।

उत्तर व मध्य भारत की तरह दक्षिण भारत में भी चालुक्य व राष्ट्रकुट वंशीय राजवंशों के दानपत्रों का प्रारूप सन्धिविग्रहिकों ने ही तैयार किए थे। चालुक्य शासकों के दानपत्रों में तो सन्धिविग्रहिक की चार पीढ़ियों का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने विभिन्न चालुक्य शासकों के काल में दानपत्र लेखन का कार्य किया था। इसी प्रकार कतिपय तमिल लेखों जैसे शिवकाशी ताम्रपत्र व लिडेन ताम्रपत्र का प्रारूप भी सन्धिविग्रहिक के द्वारा लिखा गया था। कालान्तर में यह पदाधिकारी चोल प्रशासन में उत्तर मन्त्री के नाम से जाना गया। चोल प्रशासन में आणत्ति राजा के मौखिक आदेश प्राप्त करता था तथा उत्तरमन्त्री उन्हें लिखता था।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय प्रशासन में सन्धिविग्रहिक नामक अधिकारी युद्ध व शान्ति का प्रमुख तो होता ही था साथ ही वह एक राजलेखक की भूमिका का निर्वहन भी करता था, जिसकी पुष्टि साहित्यिक व अभिलेखीय दोनों साक्ष्यों से होती है। राजलेखक के रूप में वह विभिन्न लिपियों व भाषाओं का ज्ञाता होता था तथा अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण वह अन्य राज्यों के साथ राजकीय पत्र–व्यवहार करता था। इसके अतिरिक्त राजा के द्वारा दिये जाने वाले दानपत्रों का विवरण, मौखिक आदेश आदि लिखने का कार्य भी यही करता था। गुप्त काल से लेकर पूर्व मध्यकालीन विभिन्न राजवंशों के दानपत्रों में प्रायः सन्धिविग्रहिक की उपस्थिति मिलती है, जो प्राचीन भारतीय राजव्यवस्था में न केवल इसके महत्त्व को दर्शाता है, बल्कि दानपत्र लेखक के रूप में भी इसकी भूमिका को स्पष्ट करता है।

सन्दर्भ सूची

1. गेरोला, वाचस्पति (सम्पादक) (2013) कौटिलीय अर्थशास्त्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ. 19।
2. फ्लीट, जे.एफ. (1988) *अलाहाबाद पोस्ट्ह्युमस स्टोन पिलर इन्सक्रिप्शन्स ऑव समुद्रगुप्त,* कार्पस इन्सक्रिप्सन इण्डिकेरम्, जिल्द 3, भारत सरकार प्रेस, कलकत्ता, भाग 3, पृ. 16।
3. भाग–3, पृ. 16।
4. काणे, पी. वी. (1973) *हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र,* भाग–3, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्सटिट्युट, पूना, पृ. 1006।
5. सरकार, डी. सी. (1966) *इण्डियन इपिग्राफिकल ग्लॉसरी,* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 295।
6. फ्लीट, पूर्वोक्त।
7. महाभारत, शान्ति पर्व 85/30।
8. मनुस्मृति 7/65–66।
9. जायसवाल, के. पी. (1984) *हिन्दू पॉलिटी,* इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयागराज, पृ. 248।

10. सरकार, डी. सी. (1965) अलाहाबाद इन्सक्रिप्सन ऑव समुद्रगुप्त, सेलेक्ट इंस्क्रिप्सन बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, भाग–1, कलकत्ता विश्वविद्यालय, पृ. 268, पंक्ति 32।
11. राजतरंगिणी, 4/142–143।
12. महाभारत, पूर्वोक्त।
13. गेरोला, वाचस्पति वही, पृ. 119।
14. वही, 49।
15. मत्स्य पुराण, 96/16।
16. पद्म पुराण, 37/3,4।
17. यशःस्तिलक चम्पू, पूर्व खण्ड, श्लोक 251।
18. मानसोल्लास, 2/2/127।
19. नीतिवाक्यामृतम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1972, पृ. 190।
20. सरकार डी. सी., पूर्वोक्त।
21. सरकार डी. सी. (1965) साँची स्टोन इन्सक्रिप्सन ऑव चन्द्रगुप्त II, पूर्वोक्त, पृ. 280, पंक्ति 4।
22. पाठक, विशुद्धानन्द (2015) *दक्षिण भारत का इतिहास,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ. 101।
23. जोशी, लक्ष्मणशास्त्री (1937) *धर्मकोश व्यवहारकाण्ड,* प्राज्ञपाठशाला मण्डल, सतारा, पृ. 349।
24. वही।
25. याज्ञवल्क्यस्मृति (2015) चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, पृ. 142।
26. कृत्यकल्पतः, व्यवहारखण्ड, पृष्ट 157–158।
27. अल्तेकर, ए. एस. (2009) *प्राचीन भारतीय शासन–पद्धति,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 126।
28. शर्मा, आर. एस. (2007) *प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 306।
29. जायसवाल, काशी प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 296।
30. सरकार, डी. सी. (1965) गुनैधर कॉपर प्लेट इन्सक्रिप्सन ऑव वैन्यगुप्त, पूर्वोक्त, पृ. 343, पंक्ति 17।
31. फ्लीट खोह कॉपर इन्सक्रिप्शन्स ऑव द महाराज हस्तिन द इयर 163, कार्पस इन्सक्रिप्सन इण्डिकेरम् भाग–3, पृ. 104, पक्ति 29–30।
32. वही, पृष्ट 105, टिप्पणी–5।
33. वही, पृष्ट 134 पंक्ति 19–20।
34. वही, पृष्ट 157, पंक्ति 31।
35. वही, पृष्ट 169, पंक्ति 27।
36. पाण्डेय, राजबली (20047) *भारतीय पुरालिपि,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 84।
37. मिराशी, वी. वी. (1954) *सूरत प्लेट आवॅ व्याघ्रसेनः इयर 241,* कार्पस इन्सक्रिप्सन इण्डिकेरम् भाग–4, खण्ड–1,
38. पृ. 27, पंक्ति 17–18।
39. वही, अभोणा प्लेट ऑव शंकरगण (कलचुरि): इयर 347, कार्पस इन्सक्रिप्सन इण्डिकेरम् भाग–4, खण्ड–1।
40. पृष्ट 41, पंक्ति 34।
41. वही, वडनेर प्लेट ऑव बुद्धराज (कलचुरि): इयर 360, कार्पस इन्सक्रिप्सन इण्डिकेरम् भाग–4, खण्ड–1, पृ. 49 पंक्ति 34।
42. वही, सरसवणी प्लेट ऑव बुद्धराज (कलचुरि): इयर 361, *कार्पस इन्सक्रिप्सन इण्डिकेरम्,* भाग–4, खण्ड–1, पृ. 54, पक्ति 34।
43. महालिंगम, टी. वी. (1955) *साउथ इण्डियन पॉलिटी,* मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास, पृ. 143।
44. कुमारी, रेनुका (1989) *चालुक्य और उनकी शासन व्यवस्था,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 86।
45. महादेवन, चित्रा (2013) *हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑव तमिलनाडु,* डी. के. प्रिन्टवर्ल्ड, दिल्ली, पृ. 53।
46. वही।
47. पाठक, विशुद्धानन्द, पूर्वोक्त, पृ. 425।

****